आलेख

समकालीन उपन्यास : प्रतिरोध का स्वर

➤ रोहिताश्व

समकालीन उपन्यास अपने देश, काल, युगीन यथार्थ और वैचारिक अंतर्विरोधों को रूपायित ही नहीं करते हैं बल्कि ऐतिहासिक संक्रमण में मानवीय जिजीविषा और प्रतिरोध की संस्कृति के आख्यान भी रचते हैं। समकालीनता का प्रत्यय युग, काल, समय और स्पेस से जुड़ाव है, अपने दौर के विरोधी वर्गों के कलात्मक प्रतिबिंबन के साथ-साथ वैचारिक संघर्ष और चेतना के द्वार पर प्रतिबद्ध दस्तक भी है। यह केवल लेखकीय आवेग, आवेश और प्रतिक्रिया का बायस ही नहीं बल्कि लेखक के 'विजन' की उपस्थिति के साथ वर्गीय शोषण के प्रतिरोध और विद्रोह का भाव भी है।

कहना न होगा कि कोई भी सार्थक कृति, औपन्यासिक रचना या क्लासिक प्रवृत्ति की गाथा, विचारधारा, दर्शन और अभिव्यक्ति के स्तर पर न केवल अपने देश-काल, समय और स्पेस से मुठभेड़ करती है बल्कि वह कृति, कृतिकार और पाठक की वैचारिक आत्मपरक त्रयी में; सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनैतिक परिवर्तन के कलात्मक प्रतिबिंबन में; उसका बैरोमीटर और सीस्मोग्राफ भी होती है।

मुद्दा केवल सामाजिक-सामाजिक एवं राजनैतिक शोषण के प्रतिरोध के स्वर का ही नहीं है; समकालीन उपन्यास सृजन में क्या यथार्थ की अनुगूंज नहीं है? इस बात का भी हमें अहसास होना चाहिए कि हमारे रचनाकार क्या यथास्थिति के पोषक हैं या क्रूर विसंगतिपूर्ण माहौल में प्रतिकार और विद्रोह का स्वर भी अपनाते हैं? प्रश्न यह भी है कि आत्मपरक अभिव्यक्ति के साथ-साथ वे व्यक्तिचेतना व समूह चेतना के प्रतिनिधि रूपों को रूपायित कर पाते हैं?

विगत पचास-आठ वर्षों में विभिन्न रचनाकारों ने अपनी-अपनी अभिरुचि, क्षमता, विचारधारा और दर्शन के अनुकूल 'कथ्य और शिल्प' के स्तर पर परती जमीन तोड़ने की कोशिश की है, चाहे वे अज्ञेय, निर्मल वर्मा, राजकमल चौधरी के उपन्यास हो अथवा नागार्जुन, भीष्म साहनी, यशपाल, श्रीलाल शुक्ल, जगदीश चंद्र, शिवमूर्ति, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान और चित्रा मुद्गल आदि-आदि। कहना न होगा कि कतिपय महत्त्वपूर्ण रचनाकारों ने मूल्य चेतना, विजन, अभिव्यक्ति कौशल के बल पर ही नहीं बल्कि अपनी वर्ग-चेतना से उबरकर कहीं-कहीं डिक्लास (व्यक्तित्त्वांतरित) होकर प्रतिरोध की वैचारिक-सांस्कृतिक परंपरा विकसित की है।

यह कलात्मक ही नहीं वरन वस्तुपरक सत्य है कि एक ही ऐतिहासिक दौर के दो विभिन्न रचनाकारों की एक ही

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

अंतर्वस्तु या थीम पर रची गयी रचनाएं एक जैसी नहीं होगी। जिसके कारण 'विरुद्धों के सामंजस्य' में; वर्ग-विभक्त समाज में विभिन्न रचनाकारों के जीवनानुभव, प्रतीति के क्षण और प्रतिबद्धता के स्फुरण अलग-अलग होंगे। जो विभिन्न पात्रों के माध्यम से प्रसंग, घटना और परिवेश में अलग-अलग प्रतिनिधि व टाईप पात्रों में रूपायित होंगे। उन्हें नये-पुराने प्रतिमानों और अलग-अलग विमर्शों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

समकालीन हिंदी उपन्यास : प्रतिरोध की संस्कृति की पृष्ठभूमि के बारे में विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा। विचारणीय मुद्दा यह है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में क्या हमारी भारतीय उपन्यास परंपरा में प्रतिरोध-रेजिस्टेन्स की भावना सक्रिय नहीं रही हैं? क्या हमारे हिंदी रचनाकारों ने साम्राज्यवादी-पूंजीवादी व्यवस्था और प्रशासन के खिलाफ प्रतिरोध और सतत संघर्ष का आह्वान नहीं किया है? कारण वर्तमान को समझने के लिए अतीत का उत्खनन आवश्यक होता है। एन्तोनियो ग्राम्शी ने भी कहा है कि "यदि वर्तमान को बदलना चाहते हो, तो वह जैसा भी है, उसी प्रचंड रूप में उसके यथार्थ को उद्घाटित करना अत्यंत आवश्क होता है।

भारतीय उपन्यास परंपरा में ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध और साम्राज्यवादी-पूंजीवादी उत्पीड़न के खिलाफ वैचारिक संघर्ष की एक लंबी तो नहीं; पर एक क्षीण परंपरा जरूर पायी जाती है। जो सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक विसंगतियों में चेतना के द्वार पर परिवर्तन हेतु सार्थक दस्तक देती है। जो रचनाकार राष्ट्रीय संघर्ष, वैश्विक परिवर्तन और मुक्तिकामी चेतना के जागरूक पर्यवेक्षक थे; उनमें बंकिम और प्रेमचंद का उललेख गर्व से किया जा सकता है और यही हाल स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कतिपय प्रतिबद्ध रचनाकारों के लेखन का है जिनमें यशपाल, नागार्जुन, भीष्म साहनी, जगदीशचंद्र, कुरूर्तुल ऐन हैदर, महाश्वेता देवी, वोल्गा, चंद्रकांता, कमलेश्वर, शिवमूर्ति और महाबलेश्वर सैल आदि के नाम उल्लेखनीय है। जो वैचारिक अंतर्वस्तु और रचनात्मक कौशल से ऐतिहासिक संक्रमण काल के सौंदर्यबोधी स्पेस को रेखांकित करते हैं।

उपन्यास सृजन और मूल्यांकन के संदर्भ में हमें रचनाकार के सतत् प्रतिरोध-भाव और छद्म चेतना (फाल्स-कान्शियसनेस) के प्रारूप और पैटर्न वाले रचना कर्म को खंगालना होगा। पता करना होगा कि आखिरकार वे कौन रचनाकार हैं? जो यथार्थ की विभिषिका को झेलते हुए, युगीन संक्रमण की पीड़ा में मानवीय चेतना के सकारात्मक हस्ताक्षर बनते हुए प्रतिरोध के चरित्र गढ़ पाते हैं। नागार्जुन, यशपाल, भीष्म साहनी, महाश्वेता देवी, जगदीश चंद्र, शिवमूर्ति, चंद्रकांता, मृदुला गर्ग की परंपरा में सकारात्मक संघर्षशील 'विजन' का प्रारूप रच पाते हैं। और कौन से ऐसे रचनाकार हैं जो अपने अंतर्मन की गुफाओं में भटकते हुए अंतश्चेतना की गुहार मचाते हुए, मनोविश्लेषण एवं अस्तित्त्व की अनसुलझी राहों में सैक्स, वर्जना और यौन तुष्टि के तिलिस्म निर्मित करते हैं चाहे वे अज्ञेय, निर्मल वर्मा, राजकमल चौधरी, रवींद्र कालिया ही क्यों न हो अथवा कांता भारती, दीप्ति खंडेलवाल, नसिरा शर्मा, विभूति नारायण राय और अनामिका ही क्यों न हो।

सवाल यह भी है कि उपन्यास विधा में सशक्त प्रतिरोध का स्वर क्या केवल महाकाव्यात्मक उपन्यास में ही संभव है; जो क्लासिक परंपरा का हो? जिसके पाठक केवल उच्चमध्यवर्ग के सहृदय लोकतांत्रिक नागरिक हो अथवा लोकप्रिय (पापुलर लिटरेचर) परंपरा का तिलिस्मी-जासूसी, रोमांच-रोमान्स का उपन्यास भी कहीं प्रतिरोध व संघर्ष का आधार बन सकता है। गोदान, तमस और चंद्रकांता संतति व कितने पाकिस्तान के पाठक वर्ग में हमें आखिरकार समाजशास्त्रीय नजरिए से अंतर करना ही होगा।

प्रतिरोध केवल सामंती वर्णाश्रमी व्यवस्था का ही नहीं होता है, वैचारिक स्तर पर (उदाहरण

दूधनाथ सिंह : आखिरी कलाम) शिवमूर्ति : तर्पण) बल्कि यह विजन और शिल्प के प्रयोगात्मक स्तर पर साम्राज्यवादी-वैश्वीकरण के सामाजिक-राजनैतिक विरोध का भी हो सकता है। (उदाहरण- कमलेश्वर : कितने पाकिस्तान, चंद्रकांता : कथा सतीसर) लुई अल्थूसर ने जिसे हीगेमनी और रेजिस्टेन्स की संज्ञा दी है। यह सच है कि उपन्यास-साहित्य कलात्मक साक्ष्य होता है।

यह वस्तुपरक सत्य है कि उपन्यास के विस्तृत कैनवास में विभिन्न वर्गों के स्वप्न और अंतःसंघर्ष झिलमिलाते हैं, उसमें परिवर्तनशील सामाजिक-राष्ट्रीय मुद्दे उभरकर आते हैं। वैयक्तिक चेतना और सामूहिक विकास के भावबोध रेखांकित होते हैं।

वास्तव में साहित्य सृजन उन मूलभूत इच्छाओं व स्वप्नों की पूर्ति है जिसने प्रतिवाद और प्रतिरोध की संस्कृति को जन्म दिया, जो कभी भी पूर्ण न हो सकी। साहित्य सृजन व्यक्ति चेतना की कृति होकर भी कहीं न कहीं सामूहिक चेतना के एक पक्ष-विशेष की सार्वभौम उपलब्धि है। चाहे वह अज्ञेय कृत 'शेखर : एक जीवनी' हो अथवा मन्नू भंडारी द्वारा रचित 'महाभोज' अथवा कांता भारती का 'रेत की मछली' उपन्यास हो या यशपाल की 'दिव्या'।

उपन्यास सृजन में रचनाकार वैयक्तिक चेतना और राष्ट्र के परिवर्तनशील और संघर्षशील स्वरूप में, आत्मपरक अभिव्यक्ति और युगीन संघर्ष के प्रतिरोध स्तर पर एक आंतरिक द्वंद्व से गुजरते हैं; वह वर्ग विभक्त समाज में; अपनी वर्गाभिरुचि व वंश परंपरा, विजन और अभिव्यक्ति कौशल के अनुकूल या तो 'आनंदमठ' (बंकिम) की सृजना करेगा अथवा 'उमरावजन अदा' (मिर्जा रूसवा) जैसी कृति रच पायेगा। रचनाकार विशेष अपनी प्रगतिशील आस्था से नारी जीवन की दुर्दशा और परिवर्तित स्वरूप पर 'दिव्या' (यशपाल) की रचना करेगा अथवा युगीन संक्रमण और भारत-पाक विभाजन पर 'झूठा सच' उपन्यास की। अपनी समझ, संवेदना और विजन से कृष्ण सोबती दफ्तरी माहौल पर या तो वैयक्तिक चेतना का उपन्यास 'यारों के यार : तीन तहाड़' रच पायेगी और युगीन भावबोध से भारत-पाक विभाजन एवं स्त्री जीवन की लोमहर्षक गाथा आंतरिक भाव से 'जिंदगी नामा' रचेगी।

पाठक अपनी वर्गाभिरूचि और संवेदना से या तो 'तमस' (भीष्म साहनी) को तरजीह देगा, जो प्रतिरोध और वैचारिक स्तर पर महत्त्वपूर्ण कृति है अथवा व्यंग्य-प्रहसन, मनोरंजन और शाब्दिक क्रीडा की कृति 'राग दरबारी' (श्री लाल शुक्ल) को। यही अवधारणा फैंटेसी शिल्प की कृति 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर) पर लागू होती है और विजन व प्रतिरोध के स्तर की 'तर्पण' (शिवमूर्ति) जैसी औपन्यासिक कृति पर भी। कारण कृति कृतिकार और पाठकीय त्रिकोण में प्रायः अंतर रह जाता है। साहित्य का समाजशास्त्र कृति की अंतर्वस्तु एवं विचारों के अध्ययन में तो सक्षम है पर कृति के सौंदर्यशास्त्रीय एवं कलात्मक मूल्यों के संधान और विश्लेषण के लिए अपनी दृष्टि को पूर्णतः विकसित नहीं कर पाया है। लूसिए गोल्डमान भी स्वीकार करते हैं कि "समाजशास्त्रीय सौंदर्यशास्त्र की सीमाएं हैं और उसे हम भाषा के संरचनात्मक विश्लेषण में सक्षम नहीं कह सकते हैं। (दि हिडन गॉड) विश्वविद्यालय के अध्ययन और अध्यापन, विचार-विमर्श और विश्लेषण के स्तर पर 'कितने पाकिस्तान (कमलेश्वर) और 'अग्निगर्भ' (महाश्वेता देवी) उपन्यास की संरचना और उपन्यासगत प्रस्तुति क्योंकर समुचित न्याय हासिल नहीं कर पाती है? उपन्यासगत 'प्रतिरोध' और 'विरोध' का स्वर क्योंकर अनदेखा रह जाता है टैक्सट और विमर्श के संदर्भ में। कहीं न कहीं पर अध्यापकों और आलोचकों में विश्व साहित्य के 'विजन' और शिल्प के संधान में कमी रह जाती है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद और जमींदारी-

पूंजीवादी शोषण के खिलाफ प्रेमचंद का युगबोधी स्वर और प्रतिरोध तीखा है तो प्रसाद का स्वर सांस्कृतिक द्विवेदी, विश्वंभरनाथ उपाध्याय के उपन्यासों 'अनामदास का पोथा', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'जोगी मत जा, जाग मच्छंदर गोरख आया' आदि में देख सकते हैं। रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा, यशपाल, राहुल सांस्कृत्यायन, कभी अतीत के पात्र-प्रसंगों से अपना कला-वितान रचते हैं तो कभी युगीन अंतर्विरोधों से टकराने का दुःसाहस पालते हैं। यह उनकी अभिरुचि और कला सृजन की अनकही गाथा है।

स्वातंत्रता पूर्व हिंदी उपन्यासों में प्रतिरोध का स्वर "ब्रिटिश साम्राज्यवाद और पूंजीवादी शोषण के खिलाफ प्रतिवाद का रहा है-- जिनमें किसान-मजदूर और गांधीवादी साम्यवादी दर्शन के प्रतिबद्ध रचनाकार सक्रिय रहे हैं। पर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी एवं भारतीय उपन्यास समकालीन इतिहास बोध, युगीन संघर्ष, अंतर्विरोधों से ग्रस्त मध्यवर्ग के सकारात्मक प्रयत्नों का गत्यात्मक डायनामाईक चित्र प्रस्तुत करते हैं। व्यवस्था और लोकतंत्र की विषमता और भयावहता स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के उपन्यासों में कलात्मक स्तर पर उभरकर आयी है।

भारतीय जन जीवन की नयी व्यवस्था का निर्माण भविष्य के विजन से तो जुड़ा ही है पर यह साम्राज्यवादी-नवसमृद्ध-पूंजीपतियों के ध्वंस तथा सत्ता व्यवस्था के प्रतिरोध भाव से भी संपृक्त है। जिनमें स्त्री, दलित, आदिवासी और पिछड़े हुए लोगों के निर्माण की आकांक्षा भी अनुस्यूत है। 'गोदान' (प्रेमचंद) की परवर्ती परंपरा में; 'झूठा-सच' (यशपाल), 'तमस' (भीष्म साहनी), 'आधा-गांव' (राही मासूम रजा), 'काला जल' (शानी), 'सूखा बरगद' (मंजूर एहत शाम), 'मुर्दाघर' (जगदंबाप्रसाद दीक्षित), 'धरती धन न अपना' (जगदीश चंद्र), 'चाक', 'विजन' (मैत्रेयी पुष्पा), 'कठगुलाब' (मृदुला गर्ग), 'अपने अपने चेहरे', 'तालाबंदी' (प्रभा खेतान), 'झीनी-झीनी बीनी चादरिया' (अब्दुल बिस्मिल्लाह), 'राग-दरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), 'बाबा बटेसरनाथ' (नागार्जुन), 'आवां' (चित्रा मुद्गल), 'कलिकथा ! वाया बायपास' (अलका सरावगी), 'पाही घर' (कमलाकांत त्रिपाठी), 'कथा सतीसर' (चंद्रकांता), 'सात आसमान' (असगर वजाहत), 'आखिरी कलाम' (दूधनाथ सिंह), 'जहां बांस फूलते हैं' (श्रीप्रकाश मिश्र), 'तर्पण' (शिवमूर्ति), 'सावधान! नीचे आग है', 'धार' (संजीव), 'गगन घटा लहरानी' (मनमोहन पाठक), 'परछाई नाच' (प्रियंवदा), 'परिशिष्ट' (गिरिराज किशोर), 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर) आदि आदि उपन्यासों में राष्ट्रवाद की मुख्य धारा (अभिजात्य वर्ग से बहिष्कृत) बेजुबान और उपेक्षित किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, दलितों और आदिवासियों की ट्रेजडी का आख्यान है। जो संघर्षरत जनजीवन है और उपेक्षित भी। जो नींव के पत्थर हैं और अंधकार के शिकार भी। जो प्रतिरोध का स्वर रेखांकित करते हैं और चेतना के द्वार पर दस्तक भी देते हैं।

कतिपय समर्थ रचनाकारी ने अपने देश-काल, समाज-स्पेस और वर्ग-विभक्त जीवन शैली की आलोचना आख्यान-प्रसंग, पात्र-वर्णन के माध्यम से की है। पर कहीं-कहीं उनकी रचनाएं रोमांटिक प्रतिरोध की है अथवा सेलेबल प्रतिरोध की। उदाहरण हेतु अज्ञेय कृत 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और निर्मल वर्मा के 'वे दिन' तथा 'रात का रिपोर्टर' उपन्यास के वैचारिक जगत, आत्मिक प्रतिरोध और अवसादमय प्रतिरोध की चर्चा की जा सकती है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन हमारे मत की ही पुष्टि करेगा। यथा-- "शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' दोनों उपन्यासों में पीड़ा और प्रेम के माध्यम से, उनसे व्युतपन्न सर्जनात्मक उर्जा के बीच से (और पीड़ा और प्रेम ये दोनों भी मूलतः एक ही तत्त्व है) व्यक्तित्त्व की परिपूर्णता स्वायत करने की चेष्टा हुई है। शेखर

एक अंतर्मुखी विद्रोही का आख्यान है, पर 'नदी के द्वीप' उपन्यास की मुख्य थीम सबसे पहले एक प्रणयकथा है-- अत्यंत सुकुमार, संवेदनशील विशिष्ट, पर उदार। पीड़ा और प्रेम व्यक्तित्त्व को कैसे उन्मुक्त और स्वाधीन बनाते हैं; यही उपन्यासकार की जिज्ञासा का मुख्य क्षेत्र है। लेकिन शेखर का विद्रोह छायावादी रोमांटिक प्रवृत्ति से अलग है। अज्ञेय के कृतित्त्व में विशेषतः रचनाकाल के पूर्वार्द्ध में रोमांटिक वृत्तियों की ही अधिकतर अभिव्यक्ति हुई है। पर लेखक की तुष्टि इतने से ही नहीं होती, और वह आगे बढ़ने का उपक्रम करता है, इस दृष्टि से 'शेखर का विद्रोह' यों तो सामान्यतः रोमांटिक प्रकार का है पर उसमें राग के अतिरेक से अलग होने की चेष्टा भी दिखाई देती है।

वास्तव में निर्मल वर्मा 'प्रतिरोध के स्वर' के रचनाकार नहीं हैं बल्कि वे यथास्थिति के संक्रमण-भावबोध में, अकेलेपन व संत्रास, आत्ममुग्धता और स्मृति दंश के कथाकार हैं। 'वे दिन' उपन्यास में वे अपने यूरोपीय प्रवास की पृष्ठभूमि और रचनात्मक प्रयासों की मनःस्थिति का उपयोग करते हैं। चेकोस्लाविया की पृष्ठभूमि में वे कतिपय आस्ट्रियन और जर्मन चेक पात्रों को लेकर युद्धोत्तर यूरोप की मानसिकता को; स्त्री-पुरुष संबंधों के बदलाव तथा मानवीय जिजीविषा को रेखांकित करते हैं। 'वे दिन' उपन्यास की प्रमुख पात्रा रायना रेगोर अपने पूर्व पति जाक से संबंध विच्छेद के बाद पुत्र मीता के साथ राजधानी प्राग में कथा नैरेटर के साथ पुनः जीवन के भूले-बिसरे क्षण और राग-रंग तलाशती है, स्मृति के दंश और विस्मृति के अस्तित्त्व भाव में।

कमलेश्वर के 'काली आंधी' उपन्यास के बरक्स अगर निर्मल वर्मा का 'रात का रिपोर्टर' रख दिया जाये तो ऐतिहासिक दुर्भिसंधियों और संक्रमण काल के निरूपण में 'प्रतिबद्धता' और 'प्रतिरोध' की तल्ख और रोमांटिक प्रवृत्ति का अवसाद भाव उजागर हो जाता है।

'रात का रिपोर्टर' उपन्यास राजनीतिक विसंगतियों के शिकार एक बुद्धिजीवी रिपोर्टर रिशी के मानसिक द्वंद्व और संकट का विवरण मात्र है आत्मीय स्पर पर रोमांटिक अवसाद के साथ। निर्मल वर्मा अपने ऐन्द्रजालिक शिल्प में कथानायक रिशी के अंतर्द्वंद्व को उभारते हैं कि "बौद्धिक जगत और व्यावहारिक जगत में अंतर होता है। रिशी कर्म सम्मोहन से अपने आपको निर्लिप्त नहीं रख पाता है। वह अपने लेखों के माध्यम से प्रशासन एवं सरकारी तंत्र की आलोचना और प्रत्यालोचना करता है। साथ ही सरकार के खिलाफ निकलनेवाले जुलूसों में भाग लेता है चाहे-अनचाहे भावबोध में फांसी की सजा पाये हुए... एक खास विचारधारा के तीन लड़कों की रिहाई हेतु पिटीशन पर दस्तख्त भी करता है। कारण वहां एक लड़की का आकर्षक चेहरा भी है... उसे क्या मालूम था कि ये प्रश्न एक दिन अंधेरे जीने से उतर कर उसकी जिंदगी के चौराहे पर आ खड़े होंगे... अचानक उसे पकड़ लेंगे। (रात का रिपोर्टर पृ. 20) रिशी का अंतर्मन अनिश्चय और असुरक्षा की भावना से जड़ीभूत है। सारे उपन्यास में नेरेशन है, अस्पष्ट यातना और हेलुसिएशन की स्थिति है, कहीं भी किसी चीज का कोई हल नहीं है। निर्मल वर्मा अकेलेपन, अजनबीयन, विसंगति, तनाव और विडंबना के रोमांटिक शाहकार हैः जहाँ वर्णनात्मकता व भाषायी कौशल है पर प्रतिरोध और विद्रोह का स्वर नगण्य है।

प्रगतिशील रचनाकारों ने अपने ऐतिहासिक संक्रमण काल में युगीन अंतर्विरोधों को, वर्ण और वर्ग की विषमता को, परिवर्तनशील चेतना को, 'प्रतिरोध' का स्वर, रंग और रूप प्रदान किया है। चाहे वे आंचलिक उपन्यास हो या प्रांतीय प्रदेश विशेष की जनजाति और बोली-बानी पर आधारित उपन्यास। आँचलिक जनजीवन और सबाल्टर्न वर्ग का कलात्मक आधार दिया है- नागार्जुन, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, भैरवप्रसाद गुप्त, मैत्रेयी पुष्पा, संजीव, मूर्ति हरिराम मीणा

और भगवानदास मोरवाल आदि ने।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में आँचलिकता के विभन्न तत्त्वों और उनके प्रतिरोधी स्वर को समग्रता में नहीं देखा गया है। उन्हें या तो प्रकृतिवादी उपन्यास माना गया है या आलोचनात्मक यथार्थवाद की कृति-विशेष। आँचलिकता को प्रकृतवाद (नेचुरलिज्म) और आलोचनात्मक यथार्थवाद के पैटर्न में देखते हुए 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'आधा गाँव', 'काला जल', 'बाबा बटेसरनाथ' और 'माण्डवी बहती रही' जैसे श्रेष्ठ उपन्यासों को देश-काल-समाज-स्पेरा के बृहत्तर सरोकारों से काटकर महज उसके रूपवादी ढाँचे एवं वर्णनात्मक भाषायी कौशल की आस्वापरक बहस तक केंद्रित कर दिया जाता है।

आँचलिक उपन्यासों का पुनर्गाठ जरूरी है 'कथ्यरूपी विजन' भाषा-शैली-शिल्प के पैटर्न और 'कालबद्धता' के साथ उनके अतिक्रमण और प्रतिरोध की शक्ति का विश्लेषण जरूरी है। अन्यथा कच्चे संवेदन और समझ के आलोचक 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' को रीति रिवाजों, 'बाबा बटेसरनाथ' के कथ्य में अन्तर्निहित पूँजीवादी जमींदारी शोषण की प्रक्रिया का वर्णन ही कर पायेंगे। वे गोवा-सुनापरान्त की जमीन पर व्याप्त 'माण्डवी बहती रही' (अरविंद पाण्डेय कृत उपन्यास) की प्रतिरोधी संस्कृति का अवगाहन नहीं कर पायेंगे। 'डूब' और 'इदन्नमम' को बुन्देलखण्ड की बोली-बानी का ही उपन्यास मानकर अपने प्राध्यापकीय आलोचना कर्म की इतिश्री कर लेंगे। वैसे भी समाजशास्त्रीय आलोचना और सौंदर्यबोधी आशंसा हर एक प्राध्यापक-जीव के बस की बात नहीं है।

आँचलिक उपन्यासों की पुर्नपाठ और भिन्न पाठ इसलिए भी जरूरी है कि "प्रायः इनमें किन्हीं विशेष चरित्रों, स्थितियों या समस्याओं का उद्घाटन न होकर एक संपूर्ण कालखण्ड अँचल के बहाने उद्घाटित होता है। नदी के द्वीप की तेर्ज पर न तो इनमें रेखा भुवन न चंद्रमाधव सरीखे पात्रों की केंद्रियता होती है और न "मुझे चाँद चाहिए" की तर्ज पर वर्षा वशिष्ठ जैसे पात्रों की 'सिन्थेटिक तराश।' यहाँ नायकत्व कुछ पात्रों का न होकर 'समय' विशेष का होता है। शायद इसीलिए राही मासूम रजा 'आधा गाँव' को 'गंगौली' से गुजरने वाले 'समय' की कहानी कहते हैं।" 'समय' से तात्पर्य यहाँ देश-काल-समाज के गत्यात्मक परिवर्तन का समय है।

वीरेन्द्र यादव आँचलिक उपन्यासों की विवेचना 'सबाल्टर्न' (निम्नवर्गीय प्रसंग) की प्रस्तावना व भूमिका में रखने की पेशकश रचते हैं। अधिकतर आँचलिक आंचलिक उपन्यास 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' के 'आधार-आधेय' (बेस एण्ड सुपर स्ट्क्चर) रूप को ही प्रकट करते हैं। सीधे-सीधे प्रतिरोध और विद्रोह की भूमिका नहीं निभा पाते हैं। चाहे वे 'मुखड़ा क्या देखें' (अब्दुल बिस्मिलाह), काला-पहाड़ (भगवानदास मोरवाल), संरस्कार (कन्नड़ लेखक- यू. आर. अनंतमूर्ति), चेम्मीन (तक्षी शिवशंकर पिल्ले), ही क्यों न हो। बांगला भाषा की कालजयी आस्था की रचनाकार महाश्वेतादेवी का 'चोट्टी मुण्डा और उसका तीर' और 'अग्निगर्भ' उपन्यास आँचलिक उपन्यास की सीमा का अतिक्रमण करके प्रतिरोध और आदिवासी संघर्ष की महागाथा बन जाता हैं।

आंचलिक उपन्यास या महानगरीय जीवन के उपन्यास हो अथवा आदिवासी जनजीवन एवं स्त्री विमर्श के उपन्यास, कभी-कभी हमें एक ही रचनाकार की विभिन्न कृतियों के विरोध और प्रतिरोध की कई-कई पर्तें और शिल्प-वर्णन के सांचे मिल जाते हैं। बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास की मीमांसा में अक्सर यह भाव समुच्चबोध, प्रश्नवाचक मुद्रा में तांडव नृत्य करता है - "नागार्जुन रोमांटिक कथाकार हैं या यथार्थवादी? नागार्जुन आंचलिक कथाकार हैं या प्रगतिशील आस्थाओं के शाहकार? नागार्जुन ग्रामीण जीवन की बोली-बानी और विद्रुपताओं के चितेरे हैं यी स्वातंत्र्योत्तर किसान जीवन एवं वर्ग-संघर्ष

के रूपायनकर्ता? नागार्जुन कहीं रेणु, मार्केण्डेय, और शिवप्रसाद सिंह की तरह किस्सागो शैली और मार्क्सवादी प्रतिबद्धता के कथाकार हैं या ऋतु परिवर्तन, जीवन की विद्रुपता और युग परिवर्तन के अमिट कालजयी हस्क्षातर? लगता है हर विशेषण, हर रूपक नागार्जुन के लेखन को विश्लेषित करने के लिए अक्षम है भाषा-भाव वर्णन शैली, मुहावरों, लोकोक्तियों के अभिनव और कलात्मक सांचे में 'प्रतिरोध के स्वर' वाला यह लासानी लेखक अभी भी सरापा अलक्षित रहा है अपने युग और देश-काल के अक्षांसरूपी रचनाकारों व आलोचकों के समक्ष।

राजेंद्र यावद कृत 'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में शरद और जया रोमांटिक युगल हैं। जो प्रकारांतर से फ्रांस के अस्तित्त्ववादी दार्शनिक ज्यॉ पाल सार्त्र और सीमोन द बुआ की तरह बगैर विवाह किए साथ रहने का फैसला करते हैं। कथ्य परिवेश, चरित्र-चित्रण भारतीय जन-जीवन के अनुरूप है जिनमें समसामयिक राजनैतिक संघर्ष में अवसरवादी प्रवृत्ति का प्रतिरोध भी मुख्य अंतर्वस्तु के रूप में है। राजेंद्र यावद मध्यवर्गीय अंतश्चेतना, वर्जना के प्रतिरोध, यौन बुभुक्षा और इच्छित जीवन शैली की आकांक्षा का सटीक चित्रण 'सारा आकाश', 'कुलटा', 'शह और मात', 'मंत्रबिद्ध' आदि उपन्यासों में रचते हैं। यथार्थ के कलात्मक चित्रण और प्रतिरोध की भावना उनमें है पर वे विद्रोह की सीमा तक नहीं पहुंच पाते हैं।

मोहन राकेश नाट्यधर्मी संवाद लेखक हैं। जीवन की रिक्तता, अकेलेपन और वैचारिक संघर्ष के रूपायणकर्ता लेखक हैं। 'अंधेरे बंद कमरे में' उपन्यास की मुख्य कथा के पात्र महानगर दिल्ली में रहनेवाले हरबस और नीलिमा की है। नीलिमा को सिगरेट और शराब पीनेवाली फैशनेबल नारी के रूप में चित्रित किया गया है और हरबस को उसकी प्रसिद्धि के कारण, जो नीलिमा के चित्र और नृत्य कला के कारण मिली है, सशंकित, ईर्ष्यालु और प्रतिक्रियावादी पात्र रूप में बतलाया गया है। 'न आने वाला कल' और 'अंतराल' उपन्यास भी अन्यमयस्क भाव और स्त्री-पुरुष संबंधों की भटकन पर आधारित है। एक आडंबरपूर्ण प्रतिरोध है उनकी रचनाओं में, जो लेखक की छद्म चेतना वाले आवरण को पाठक के सामने बेनकाब करता है।

कमलेश्वर के कथा साहित्य में कस्बाई जिंदगी के अंतर्विरोध, मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों के साथ-साथ राजनैतिक संक्रमण की स्थितियों को, रोमांटिक प्रतिरोध और अवसाद की स्थितियों को देखा जा सकता है। 'काली आंधी' उपन्यास में राजनीति के क्षेत्र में शिखर पर पहुंचने वाली आधुनिक नारी के द्वंद्व को सफलतापूर्वक अंकित किया गया है। 'कितने पाकिस्तान' नामक उनका उपन्यास 'क्लासिकल परंपरा और लोक परंपरा' के सीमांत को छूनेवाला उपन्यास है। जो उनके दीर्घकालीन अध्ययन चिंतन अंतर्मंथन और फैंटसी शिल्प का उपन्यास है।

समकालीन हिंदी उपन्यास हो या भारतीय उपन्यास, अगर उन्हें भारतीय महाकाव्य, आख्यान, मिथक, लोककथा, गल्प आदि की विशाल और समृद्ध कथा परंपरा से संबद्धित न किया जाए तो हम कोई श्रेयस्कर कृति नहीं पा सकेंगे। धनंजय वर्मा ने 'हिंदी उपन्यास का पुनरावतन' में सही रूप से संकेत किया है कि "मध्यवर्ग की अंतर्वस्तु को लेकर रचे गए हिंदी के लगभग सारे उपन्यासों में, आप गौर करें, किसी बड़े जीवन संघर्ष के अंकुश नहीं उभरते। एहसास की जटिलताओं से मुठभेड़ करने में वे किनाराकशी करते हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन, उद्वेलन और जीवन पद्धतियों में तब्दीली के मौजूदा दौर में दरपेश आदमी को परेशान करनेवाले बड़े सवालों से वे आंखे चुराते हैं, व्यक्ति, समाज, देश और जाति के विराट संघातों को वे समेट नहीं पाते हैं। जो समाज हमारे उपन्यास या कथा साहित्य में उभरता है क्या वह मध्यवर्ग का महाकाव्य है? या निम्न वर्ग का अथवा लोक जीवन जिजीविषा का अंतलोक?

रूप और शिल्प शैली और कथापरक पैटर्न का इतना बड़ा जखीरा भारतीय आख्यान परंपरा में है कि हमें पश्चिमी-सांचों और शिल्पगत पैटर्नों का मोहताज नहीं होना पड़ेगा। साई धनंजय वर्मा कभी-कभी सच बात कह देते हैं।

लोक आख्यान के धरातल पर विजय दान देथा ने प्रतिरोध के मुखर स्वर के रूप में, अनेक आयामों में परिव्याप्त मनुष्य के सत्य, शौर्य और उसकी शुभेच्छा की जयगाथा बन जाती है। 'प्रतिशोध' उपन्यास रूपी जयगाथा की नायिका एक साधारण सी किसान युवती है, जो राजकुमार के साथ शिकार पर आए दो सैनिकों को 'गोफड' (गुलेल टाईप का अस्त्र) के पत्थरों से लहुलुहान कर देती हैं। ऐसा वह इसलिए करती हैं कि राजकुमार और उसके सैनिक अपने राज्य की सीमा का अतिक्रमण कर उसके राज्य की सीमा में प्रवेश कर लेते हैं तथा उसकी फसलों को नष्ट करने के अपराधी हैं।

ज्योतिष जोशी के कथनानुसार विजय दान देथा का 'प्रतिशोध' उपन्यास एक लौकिक कथा के बहाने राजा-प्रजा, स्त्री-पुरुष, तथा आदर्श-यथार्थ की भौतिक व्यवस्था का विराट रूपक है, जिसमें हम आसानी से प्रभुसत्ता के आतंक के साथ-साथ प्रजा के शोषण तथा मानसिक सात्विकता का गहरा विमर्श देख सकते हैं। कहना न होगा कि जियदान देथा के पास लोकभाषा, लोक जीवन और लोक कथाओं का विलक्षण खजाना है और उनकी प्रस्तुति रोचक, संप्रेषणीय और सरस है। उनमें बिंबों, मुहावरों, और लोकोक्तियों की विलक्षण समझ है जो इक्कीसवीं सदी के पाठकों के लिए एक खोया हुआ, विस्मृत जीवन परिदृश्य है अपनी जिजीविषा और प्रतिरोध की आस्था में।

संजीव वर्तमान दौर के उपन्यासों में एक प्रतिबद्ध विवेकशील, प्रतिबद्ध और युगीन संवेदना से परिपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उपन्यासों की पारंपारिक आत्मचेतस और मनोविश्लेषण की वीथियों से हटकर वे आदिवासी जनजातियों, उपेक्षित वर्ग और कोयला खदानों के श्रमिकों की त्रासदी के साथ-साथ उनके प्रतिरोध के स्वर को रेखांकित करते हैं। रामचंद्र तिवारी के विचारानुसार "संजीव ने अपने महत्त्वपूर्ण उपन्यासों- 'सावधान नीचे आग है' और 'धार' में क्रमशः बिहार और बंगाल के कोयला अंचल में स्थित कोयला खानों में व्याप्त भ्रष्टाचार और कोयला मजदूरों के नारकीय जीवन तथा उन क्षेत्रों में रहनेवाले आदिवासियों के शोषण का यथार्थ चित्र अंकित किया है। 'धार' में उन्होंने मजदूरों की अपनी सहकारी 'जनखदान' का विकल्प पेश किया है। 'धार' की प्रमुख पात्र 'मैना' अपने संघर्ष और साहस से पाठकों को प्रभावित करती है। (हिंदी का गद्य साहित्य पृ. 199) वास्तव में 'जंगल' उनके यहां व्यवस्था और पुलिस प्रशासन, भ्रष्टाचार और आपाधापी की जटिलता का प्रतीक है और शोषण व प्रतिकार की अनथक गाधा। 'जंगल' जहां शुरू होता है' उपन्यास में 'जंगल' का प्रतिरूप अपने विविध रूपों और अर्थ-छवियों के साथ केलेडेस्कोपिक अंदाज में खुलता और खिलता है- थारू जनजाति, सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज और व्यक्ति... और सबके पीछे से, सबके अंदर से झांकता, झहराता जंगल और जंगल को जीतने का दुर्निवार संकल्प।'

(फ्लैप मैटर)

'जंगल, जहां शुरू होता है' के कतिपय पात्र परशुराम यादव, काली परेम वंशी जैसे दुर्दात डाकू तो पश्चिमी चंपारण जैसे सीमित क्षेत्र में जंगल राज कायम करते हैं किंतु सत्तावर्ग, प्रभुत्व वर्ग से बड़े-बड़े बाहुबलियों राजनेताओं, धनपशुओं, पुलिस अधिकारियों और धर्म-संप्रदाय की राजनीति में संलग्न तांत्रिकों, संतों और महंतों ने तो पूरी प्रशासन-व्यवस्था को जंगल तंत्र में तब्दील कर दिया है। हमारे बुद्धिजीवी पत्रकार और लेखक भी इस वीभत्स और भयावह स्थिति को बदलने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं।

'जंगल' जहां शुरू होता है' की असली समस्या आदिवासियों की अपने हक से बेदखली

की है। इस आर्थिक विसंगति को संजीव विभिन्न पात्रों के माध्यम से चित्रित करते हैं - "जमीन दखलियाते जा रहे हैं, लल्लन बाबू इतने बड़े जमींदार फिर भी गरीब-गुरबा की थोड़ी सी जमीन हड़पने से बाज नहीं आते।"(पृ. 6) आदिवासियों का विस्थापन-पलायन जंगलों से किस तरह हो रहा है। इसका उल्लेख धांगड नामक पात्र करता है - "ऊ जंगल काट-काट के हमारे बाप-दादा खेत बनाए और आज चलके देखो, हमरा पास एक धुर खेत नहीं। खेतों का अन्न खानेवाले अपने-अपने घरों में सुरक्षित है और वे जिन्होंने खेत बनाए, जो फसल उगा रहे हैं, इस निचार दुपहरिया में झाड़-झांखर में पड़े हैं।

इतिहास हमारी स्मृतियों में सक्रिय रहता है, विगत दौर के संघर्ष परछाई की तरह हमारे अस्तित्त्व से जुड़े रहते हैं। स्त्री विमर्श के कतिपय हस्ताक्षर ब्रा-पैण्टी विसर्जनः यौन-बुभुक्षा के मुक्त आसंग में अपना लेखन और जीवन जीवन कृतकार्य मानते हैं, वहाँ ऐसे प्रतिबद्ध युवा हस्ताक्षर भी हैं जो ऐतिहासिक संक्रमण बोध आदिवासी शोषण और जनतांत्रिक मूल्यों के लिए वर्चित इलाकों में जाकर महाश्वेता देवी की परंपरा में सार्थक लेखन और हस्तक्षेप रचते हैं। शोषण के विरुद्ध प्रतिकार का, वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर मुखर करते हैं। इनमें राकेश कुमार सिंह, श्री प्रकाश मिश्र, भगवानदास मोरवाल और मनमोहन पाठक आदि का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। राकेश कुमार सिंह के 'जहाँ खिले है रक्त पलाश' नामक उपन्यास में पलामू की गरीब जनजातियों के जीवन यथार्थ, संक्रमण बोध और उनकी अप्रतिहत जिजीविषा को केंद्र में रखा है। 'पठार पर कोहरा' नामक उपन्यास में झारखंड में रहनेवाले जनजातियों के शोषण की उनके प्रतिरोध भाव की अंतर्कथा की दास्तान रची है। 'जो इतिहास में नहीं है' नामक बृहदकाय 488 पृष्ठों के उपन्यास में ईष्ट इंडिया कंपनी द्वारा झारखंड के आदिवासी की शोषण-यंत्रणा को मुखर वाणी दी है। आदिवासियों का यह विद्रोह 1857 के स्वातंत्र्य संघर्ष पूर्व हुआ था। कहना न होगा कि उदय प्रकाश द्वारा विरचित 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड' भी प्रकारान्तर से ईष्ट इंडिया कंपनी की शोषणपरक ऐतिहासिक पेचीदगी को रेखांकित करता है।

वर्तमान दौर में आसाम-गौहाटी, मिजोरम, दिसपुर, कोहिमा, मणिपुर, अरूणाचल, ईटानगर, गोवा, केरल, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश के जन जीवन पर विलक्षण कथाएँ 'हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो रही है। जो एक प्रकार से वर्जित और उपेक्षित क्षेत्र रहा है लेखन और उपन्यास विश्लेष्ण में। विगत दशक में श्री प्रकाश मिश्र का एक दुःसाहस भरा, मिजो विद्रोह और सत्ताधारी प्रभुवर्ग के प्रतिरोध और आक्रोश का उपन्यास 'जहाँ बाँस फूलते है' प्रकाशित हुआ था। जिसमें उत्तरपूर्व की मिजो जनजाति की अस्मिता, स्वतंत्रता एवं आर्थिक शोषण की प्रक्रिया को प्रतिबद्धता और सहभागीदारिता के स्तर पर उद्घाटित किया जाता है। मिजो समाज की यह कथा तिब्बत, बर्मा और तत्कालीन बर्मा क्षेत्र तक परिव्याप्त है। विवेच्य उपन्यास में 'मिजोरम की संस्कृति' भाषा, भूगोल, जीवनचर्या, खान-पान, प्रकृति, जंगल, पहाड़ व पशु-पक्षियों का जीवंत और सार्थक प्रस्तुति व उपस्थिति इसे सार्थक एवं मूल्यवान स्वरूप प्रदान करती है। लाल डेंगा के नेतृत्व में सन् 1966 के मिजो विद्रोह की पृष्ठभूमि, भूमिगत आंदोलन, गैर-मिजो (दाइयों) द्वारा मिजोरमवासियों का शोषण, भेदभाव व उनकी संस्कृति में हस्तक्षेप, भारतीय सैन्य व गुप्तचर संगठनों की कब्जेदारी संगठन के रूप में आततायी भूमिका व मिजो समाज की आंतरिक शक्ति व दुर्बलताओं को कथा-सूत्र में पिरोता श्री प्रकाश मिश्र का यह उपन्यास कथ्य की मौलिकता के कारण अपनी पहचान अलग बनाता है। (उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता- वीरेंद्र यादव पृ. 165)

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास मिजोरम के उग्रवाद एवं प्रतिरोध जांच-पड़ताल एक

आंतरिक व्यक्ति एवं सहभोक्ता के रूप में करता है। "मिजोरम में जनश्रुति है कि हर पचास साल की आवृति पर वहाँ के बाँस फूलते हैं। उनके बीजों को खाकर चूहे बहुत बच्चे पैदा करते हैं, जो फसल खा जाते हैं और मिजोरम में अकाल पड़ जाता है। ऐसा ही अकाल 1958 में पड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप 1966 का विद्रोह हुआ है। यानी विद्रोह का मूल कारण भौतिक आवश्यकताओं में भोजन का न मिलना था, जो उग्र रूप धारण करता हुआ राजनीति के रंग में रंग गया। अकाल, अनावृष्टि के कारण भोजन के अभाव के कारण सारी मानवीयता और मूल्य भावों का क्षरण हो जाता है। वास्तव में उपन्यासकार ने मिजो जन-जीवन को, उसके सामाजिक, राजनीतिक-सांस्कृतिक और आर्थिक पक्ष व अस्मिता को गैर मिजों की निगाह से न देखकर मिजो समाज की अंतरंगता में रच-बसकर देखा है। श्री प्रकाश मिश्र मिजो समाज के बहिरंग पर ही ध्यान केंद्रित न करके उसके अंतरंग को भी अनावृत करते हैं। वहाँ शेर-भालू, कुत्ते-बिल्ली के शिकार व भोजन से लेकर जिंदा मुर्गी को खौलते पानी में उबालकर बने पेय, जिंदा भुने कुत्तों के पेट में सूअर की चर्बी के साथ सलाखों की गर्मी से पके चावलों का खाद्यान्न खाने का यानी उनकी विलक्षण भोजन शैली का वर्णन उपलब्ध है।

स्त्री-पुरुष संबंधों में जो वर्जनाहीनता है; मुक्त आसंग है; उसका सजीव चित्रण श्री प्रकाश मिश्र ने रचा है कि "कोई लंगवाल (युवक) किसी नुला (युवती) को बहन नहीं कहता और वहां की जीवन शैली में कंधे पर मर्द का हाथ कुंवारी लड़की के लिए सम्मानजनक माना जाता है। (जहां बांस फूलते हैं पृ. 298) मिजो समाज में ईसाईकरण की रूपांतरण प्रक्रिया को, मूल्यगत बदलाव को, मिजो परंपरा और हिंदू धर्म की टकराहट को, वर्चस्व की सत्ता और प्रतिकार की भावना को भी रचनाकार कई संदर्भों में मुखर करता है। कतिपय अध्येताओं का मत है कि मिजोरम में उग्रवाद प्रतिरोध और संघर्ष को बढ़ावा देने में ईसाई मिशनरियों ने सक्रिय भूमिका निभायी है। कभी जवरीमल्ल पारख ने भी संकेत किया है कि "विश्व बैन्टिस्ट एलायंस की ओर से पादरी शिरोमणि आर. कुनविले के जन आंदोलन से चर्च बढ़ता है।" नामक पर्चे में समस्त मिशनरी संस्थाओं को निर्देश किया गया कि ईसाई धर्म के प्रचार के लिए वे इन पृथकतावादी आंदोलनों में सक्रिय सहयोग करे। इन मिशनरियों की सहायता से सी.आई.ए. विश्व में क्या-क्या गुल खिला चुकी है वह किसी की आंख से ओझल नहीं है। भारत के पूर्वोतरी अंचल में सी.आई.ए. के दांत बहुत पहले ही लगे हुए थे.

विवेच्य उपन्यास में श्री प्रकाश मिश्र ने स्त्री-अस्मिता, स्त्री-संघर्ष, स्त्री-प्रतिरोध को सकारात्मक रूप से नहीं रचा है न ही वे वामपंथी आंदोलनों को मिजोरम के विद्रोहियों को सहानुभूति से देख पाते हैं। शायद यह उन पर इलाहाबाद के परिमल ग्रुप का असर हो।

आपातकाल की शोषण प्रक्रिया और प्रतिरोध पर नक्सलवादी आंदोलन के उभार और वर्ग-चेतना की पक्षधरता पर, बाबरी मस्जिद के ध्वंस और सामुदायिक एकता के स्वर पर, जन चेतना के रूपांतरण कर्म पर कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास रचे गये हैं, जो या तो आदिवासी जनजीवन के संघर्ष पर आधारित है, अथवा कबीलाई, सामंती अवशेषों की रुढ़ियों पर भी अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य में संपृक्त है। विगत 1857 के इतिहास को केंद्र में रखकर कमलाकांत त्रिपाठी अगर 'पाहीघर' और बेदखल' उपन्यास की संरचना को मूर्त रूप देते हैं तो मनमोहन पाठक भी झारखंड के पलामू क्षेत्र के औरॉव जनजाति के संघर्ष को 'गगन घटा घहरानी' को रूपायित करते हैं। जिसमें गुलामी की प्रथा और जमींदार शोषण का प्रतिकार भाव रचा गया है।

समकालीन उपन्यासों के पाठ और विमर्श के बारे में, क्लासिकल एप्रोच और लोक परंपरा की कृतियों के बारे में; हमें कृति, कृतिकार और

पाठक के आत्मीय शास्त्रीय रिश्तों के बारे में भी सोचना चाहिए; आखिर कोई रचना हमारी अंतश्चेतना, समझ, संवेदना और विजन का हिस्सा 'आनंद मठ', 'गोदान', 'आग का दरिया', 'राग दरबारी', 'अग्निगर्भ', 'मैकलुस्की गंज', 'ग्लोबल गांव का देवता', 'कार्मेलीन' या 'तर्पण' की तरह अस्मिरणीय परछाई क्यों न जाती है। आखिरकार 'किताबों की संस्कृति और पठनीयता के संदर्भ क्या है' उपन्यास का पुनरावतन में पुस्तक, पुस्तक के रचनाकार और पाठक के आपसी संबंधों पर विचार करते हुए धनंजय वर्मा ने कहा है- "किसी रचना को पढ़ना शुरू करते ही आपके भीतर जो संवेदनात्मक कंप, एक लगभग स्नायविक सिहरन और वैचारिक प्रतिक्रिया होती है, उसी के चलते आप उसके साथ यात्रा तय करते हैं और फिर पढ़ना बंद करते ही या तो आप रचना के साथ हो जाते हैं या वह आपसे दूर छिटक जाती है। अपने पढ़े जाने के दौरान ही वह आपके दिल-दिमाग पर धीरे-धीरे छाने लगती है और पढ़े जाने के बाद देर तक दिनों तक आपके साथ बनी रहती है। हमारी नजर में न केवल एक सफल बल्कि सार्थक रचना भी होती है। ऐसी रचना हमारी संवेदना को झकझोर कर हमारी यादों को कुरेदती हुई हमारे सोचने-समझने, अनुभव और भावना को एक नई रोशनी और दीप्ति दे देती है। देवदास, उमरावजान अदा, तमस, मैकलुस्कीगंज, कार्मेलीन और तर्पण आदि ऐसी रचनाएं हैं, जो हमारे परिवेश, संक्रमणशील युग और बदलती हुई समझ, संवेदना, युगबोध और 'विजन' का हिस्सा बनी रहती है।

विगत दशक से यानी इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशक से राजेंद्र अवस्थी, मेहरुनिस्सा परवेज, राही, शानी के रोमांटिक यथार्थवाद की जगह समाजवादी आस्था की प्रत्याशा के प्रतिबद्ध भावबोध और आलोचनात्मक यथार्थवाद के उपन्यास रचे गये हैं। उनमें आदिवासी जीवन, परिवर्तनशील संस्कृति, पिछड़ी हुई जनजातियों के दुर्लभ दस्तावेज भी मिलते हैं। भगवानदास मोरवाल, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, हरिराम मीणा, रणेंद्र, रोहिताश्व, चंद्रकांता, शिवमूर्ति और विकासकुमार झा उन विरल रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने लेखन की जमीन तोड़ी है। मोरवाल के 'काला पहाड़', हरिराम मीणा के 'धूनी तपे तीर', रणेंद्र के 'ग्लोबल गांव का देवता', रोहिताश्व के 'आकाश, औरत और समुद्र', प्रभा खेतान के 'पीली आंधी', चित्रा मुद्गल के 'आंवा', चंद्रकांता का 'कथा सतीसर', शिवमूर्ति के 'तर्पण' और विकास कुमार झा का 'मैकलुस्कीगंज' आदि उपन्यास हमारी चेतना के द्वार पर अभिनव दस्तक देते हैं।

'मैकलुस्की गंज' रांची के पास बसे हुए एक एंग्लो इंडियन गांव का नाम है। ब्लर्ब व फ्लैप मैटर के अनुसार 'मैकलुस्कीगंज' उपन्यास आंग्ल मूल के हिंदुस्तानियों का चाक गिरबां दिखानेवाला अद्वितीय उपन्यास है।

सरकारी 'इंदिरा आवास योजना' सिर्फ कागजी कार्यवाही है। यह हकीकत जानकर उपन्यास के प्रमुख पात्र राबिन और नीलमणि आदिवासी एवं ग्रामीण जनता के लिए मैकलुस्की आवास योजना को मूर्त रूप देना चाहते हैं। लेकिन 23 जनवरी की एक सुबह कंका की तलहटी में घरों के निर्माण के निरीक्षण हेतु निकले राबिन और नीलमणि की हत्या अज्ञात हत्यारे कर देते हैं। नीलमणि के माथे में चार गोलियां लगी हैं, वहीं बायीं तरफ एक गड्ढे में राबिन गिरा हुआ है। उसके सिर और पेट में तीन गोलियां धंसी है। हाहाकार कर रहा है गंज। घटना स्थल पर सबसे पहले पहुंचनेवाला टुइयां गंझू कुहक-कुहक कर विलाप कर रहा है, "दीया के टैम जरै छतिया... जीवन बीख समान... हो तलफत धरती-आसमान..." टुइयां गंझू रह-रहकर जमीन पर लोट रहा है। लीजा को दांती पर दांती लग रही है। मि. नोएल गार्डन टपकती आंखों से कहते हैं-- "अजीब विडंबना है... आज 23 जनवरी... नेताजी सुभाष का जन्म दिन और नीलमणि, राबिन की शहादत। गार्डन याद करने की कोशिश कर रहे

हैं... ईसा को सूली पर कब लटकाया गया था... कि चंद्रशेखर आजाद, इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में कब शहीद हुए थे... दारा शिकोह को औरंगजेब ने कब मरवाया था। मि. मिलर अवरुद्ध कंठ से पुलिसवालों को कह रहे हैं... कांट्रेक्ट किलर के जरिए दुती भगत ने खून करवाया है... इसमें कोई शक नहीं। आप लोग ठीक से इंवेस्टिगेट कीजिए।''

लगता है विकासकुमार झा हावर्ड फास्ट के उपन्यास 'स्पार्टाकस' की स्थापत्य शैली से प्रभावित हैं। वे आगामी पीढ़ी के उत्कर्ष की आशा रखते हुए क्रांति की आस्था से परवर्ती दौर के संकेत रचे हैं। खुशिया पहने नीलमणि की माँ की गोद से बिरसा को ले लिया है। (बिरसा नीलमणि व राबिन की संतान है) बिरसा को कंधे पर रखकर खुशिया पाहन लगातार नाचते हुए आर्तनाद कर रहा है- ''उलगुलान, क्रांति, उलगुलान... क्रांति। नन्हा बिरसा बीज सरीखे दाँत निकाल मुसक रहा है। परिवेश गत अंकन है- सूरज काँसे की थाली की तरह स्याह लाल हो रहा है। उधर रक्त मेंघों के दल से गोर लटका पहाड़ी घिर रही है।

आंध्र प्रदेश की तेलुगु रचनाकार वोल्गा के उपन्यास 'मरीचिका' पर सातवें दशक की तत्कालीन सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। आरोप यह लगाया गया है कि 'यह उपन्यास युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट कर उन्हें नक्सलवाद की तरफ जाने की प्रेरणा देता है।'' जबकि वे युवा पीढ़ी और नारियों को आत्मसम्मान की जिंदगी जीने और प्रगतिशील सोच को अपनाने की प्रेरणा देती रही है। वासिरेड्डी सीतादेवी एक जगह कहती है कि, 'स्त्रियों से मेरी अपील है कि वे अनादर, अपमान और जुल्म को कतई बरदाश्त न करें। वे इनके प्रतिरोध करने का साहस जुटाएँ। जो स्त्री आत्मविश्वास, धैर्य और साहस के साथ बढ़ती है उसे कोई ताकत नहीं रोक सकती।' प्रसंगवश यह माना जा सकता है कि सातवें दशक में भारतीय युवा पीढ़ी राष्टव्यापी भ्रष्टाचार भाई-भतीजावाद, राष्टीय नेतृत्व के खोखलेपन, महंगाई व बेराजगारी के कारण दिग्भ्रमिता से या तो नक्सलवाद के प्रति आकर्षिक हो रहे थे या मध्यवर्गीय धनाढ्य वर्ग के कतिपय युवा हिप्पी विचारधारा की ओर। जिसका प्रभाव हम महाश्वेता देवी, राजकमल चौधरी, यू. आर. अनंतमूर्ति, धूमिल, काशीनाथ सिंह, वासिरेड्डी सीता देवी आदि की रचनाओं में देख सकते हैं। वैसे वासिरेड्डी सीता देवी ने युवावर्ग की समस्याओं का हल प्रगतिशील आस्था और ज्ञानिक दृष्टि के तहत सांकेतिक रूप में रचा है।

लगभग सारी भारतीय भाषाओं में हाशिए पर जिंदगी जीने वाले केंद्र में विमर्श हेतु पात्र आत्मसचेत प्रतिबद्ध रूप मेंआ रहे हैं। नक्सलवादी विद्रोह, आदिवासी संघर्ष, स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श के समानांतर तमिल लिट्टे और धर्मान्तरण के मुद्दे भी प्रतिरोधी शक्ति के रूप में उभर रहे हैं।

कहना न होगा कि आपातकाल के दौर के वैचारिक संघर्ष, बाबरी मस्जिद के ध्वंस, साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतिरोध के किस्से अब पुराने हो गए हैं। साथ ही आलोचनात्मक यथार्थवाद और साम्यवादी यथार्थवाद की प्रत्याक्षा रचनेवाले कथाकारों के समक्ष प्रयोगवादी-कलावादी रचनाकार कभी अस्तित्त्ववाद का मुखौटा ओढ़कर आते रहे हैं तो कभी मनोविश्लेषण की पेचीदगी का प्रारूप। जादुई यथार्थवाद और कला का अंत का जाप करने वाले के समक्ष अभी भी प्रगतिशील-जनवादी आस्था के समर्थ रचनाकार संजीव (जंगल जहां शुरू होता है) शिवमूर्ति (त्रिशून, तर्पण), चित्रा मुद्गल (आवां), मैत्रेयी पुष्पा (विजन, चाक), भगवानदास मोरवाल (काला पहाड़), विकास कुमार झा (मैकलुस्की गंज) आदि अपनी सशक्त प्रतिरोधी रचनाओं के साथ उभर कर आए हैं।

विगत शताब्दी मानव मुक्ति तथा मानवीय प्रगति के अनथक प्रयासों की शताब्दी रही है। अनेकानेक प्रतिबद्ध रचनाकारों ने फासीवाद,

साम्राज्यवाद और पूंजीवादी षडयंत्रों के खिलाफ अपनी लेखनी की धार को मूर्त रूप प्रदान किया है। जार्ज लूकाच ने भी 'स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म' में फासीवाद के संदर्भ में यह अभिमत रचा था कि "यह सच है कि इस समय हमारी संस्कृति अंधियारे के बीच से गुजर रही है, परंतु इतिहास-दर्शन के ऊपर यह दायित्व है कि वह इस बात का निर्णय लेकिन अंधेरी सुरंग की यात्रा में आगे प्रकाश से हमारा साक्षात्कार होगा। मार्क्सवादी इतिहास-दर्शन मनुष्यता के विकास की व्याख्या के क्रम में यहीं निष्कर्ष देता है कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि मनुष्यता की यह यात्रा निरुद्देश्यता या निरर्थकता में ही समाप्त हो जाए। यह एक निश्चित, सार्थक गन्तव्य तक अवश्य पहुंचेगी।

वर्तमान दौर में महाकाव्यात्मक उपन्यास लेखन के दावे तो बहुत हुए हैं,... क्लासिक परंपरा और लोकप्रिय उपन्यास परंपरा के विमर्श की चर्चा भी खूब हुई है, पर मन में यह सवाल भी कुलबुलाता है कि क्या नई पीढ़ी क्लासिक और लोकप्रिय परंपरा के संतुलन की कृतियां रच पाएगी? जो आनंदमठ (बंकिमचंद्र), गोरा (रवींद्रनाथ टैगोर), छह बीघा जमीन (फकीर मोहन सोनापति), उमराव जान अदा (मर्जा रूसवा), गोदान (प्रेमचंद), मुर्दो का टीला (रांगेय राघव), सहस्त्रफण (विश्वनाथ सत्यनारायण), हाल मुरीदों का (कर्तारसिंह दुग्गल), नदी के द्वीप (अज्ञेय), बाणभट्ट की आत्मकथा (हजारीप्रसाद द्विवेदी), आग का दरिया (कुरूर्तुल ऐन हैदर), तमस (भीष्म साहनी), ऐवाने गजल (जीलानी बानो), कार्मेलीन (दामोदर मावजो), काला जल (शानी), पर्व (भैरप्पा), अग्निगर्भ (महाश्वेता देवी), चाक (मैत्रेयी पुष्पा), संस्कार (यू.आर. अनंतमूर्ति), आवां (चित्रा मुद्गल), कथा सतीसर (चंद्रकांता), जहां जंगल शुरू होता है (संजीव), तर्पण (शिवमूर्ति), चेक्मीन (तवफी शिवशंकर पिलै), युग सांवर (महाबलेश्वर सैल), आदि की सरहदें, 'विजन', प्रतिरोध और शिल्प के स्तर पर अतिक्रमित कर पाएगी?

वर्ग विभक्त समाज में, औपनिवेशिक शोषण हो या साम्राज्यवादी-नवपूंजीवादी संक्रमणशील स्थिति, उपर्युक्त रचनाओं की सहयात्री परंपरा में सौ सालों का एकांत (गार्सिया मारक्वेज), गेहूं के दाने (न्यूगी), किस्सागो (मारियो वागांस ल्योसा) अग्निगर्भ (महाश्वेता देवी) आदि रचनाएं तीसरी दुनिया की जमीन पर ही लिखी जा सकती है। काफ्का, डी.एच. लारेन्स, जेम्स ज्वायस और वर्जीनिया वुल्फ आदि की रचनाएं तीसरी दुनिया के वाशिंदों, देशों व प्रसंगों में न तो कृत कार्य होगी और न ही रची जा सकती है। सवाल यह है कि कौन सी रचनाएं हमारी जिंदगी में सार्थक हस्तक्षेप रच सकती है अथवा पाठकीय अभिशंसा के साथ एक 'विजन' दे सकेगी। केवल भाषिक प्रयोग, आंचलिक क्षेत्रीय वैशिष्ट्य शिल्पगत प्रयोग से रचनाएं श्रेष्ठ नहीं कहला पाएगी, वरना कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, चंद्रकांता, रेणु और निर्मल वर्मा ही 'समग्रता' के रचनाकार माने जाते। हमें युग-संपृक्ति, युगीन-संक्रमण की गवाही देनेवाली 'समग्रता' के विजन की रचनाएं चाहिए, जिसमें धर्म, जाति, वर्ण-वर्ग, स्थानीयता, आंचलिकता से उपर राजनैतिक मत मतादारों के विश्लेषण से आगे जाकर मानवीय जिजीविषा और मूल्यबोध की प्रतीति की रचना हो, समकालीनता और युगीन यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिंब होकर भी 'शाश्वत मानवीय मूल्यों का संधान और उद्घोष हो, जो विगत के 'आनंदमठ', 'आग का दरिया', 'गोदान', 'तमस', 'अग्निगर्भ', से आगे का रचना संसार 'जहां जंगल शुरू होता है', 'आखिरी कलाम', 'मैकलुस्कीगंज' या 'तर्पण' आदि का आगाज अथवा युगीन स्वर प्रमाणित हो जो वस्तुतः क्लासिकल परंपरा और लोकप्रिय उपन्यास का आधार प्रमाणित हो, जो हारे हुए-पराजित मनों में संघर्ष, प्रतिकार, प्रतिरोध और आत्मविकास का संबल बन सके। आमिन, तथास्तु और इतिश्री। ❑